शोध और नवाचार

Research and Innovation

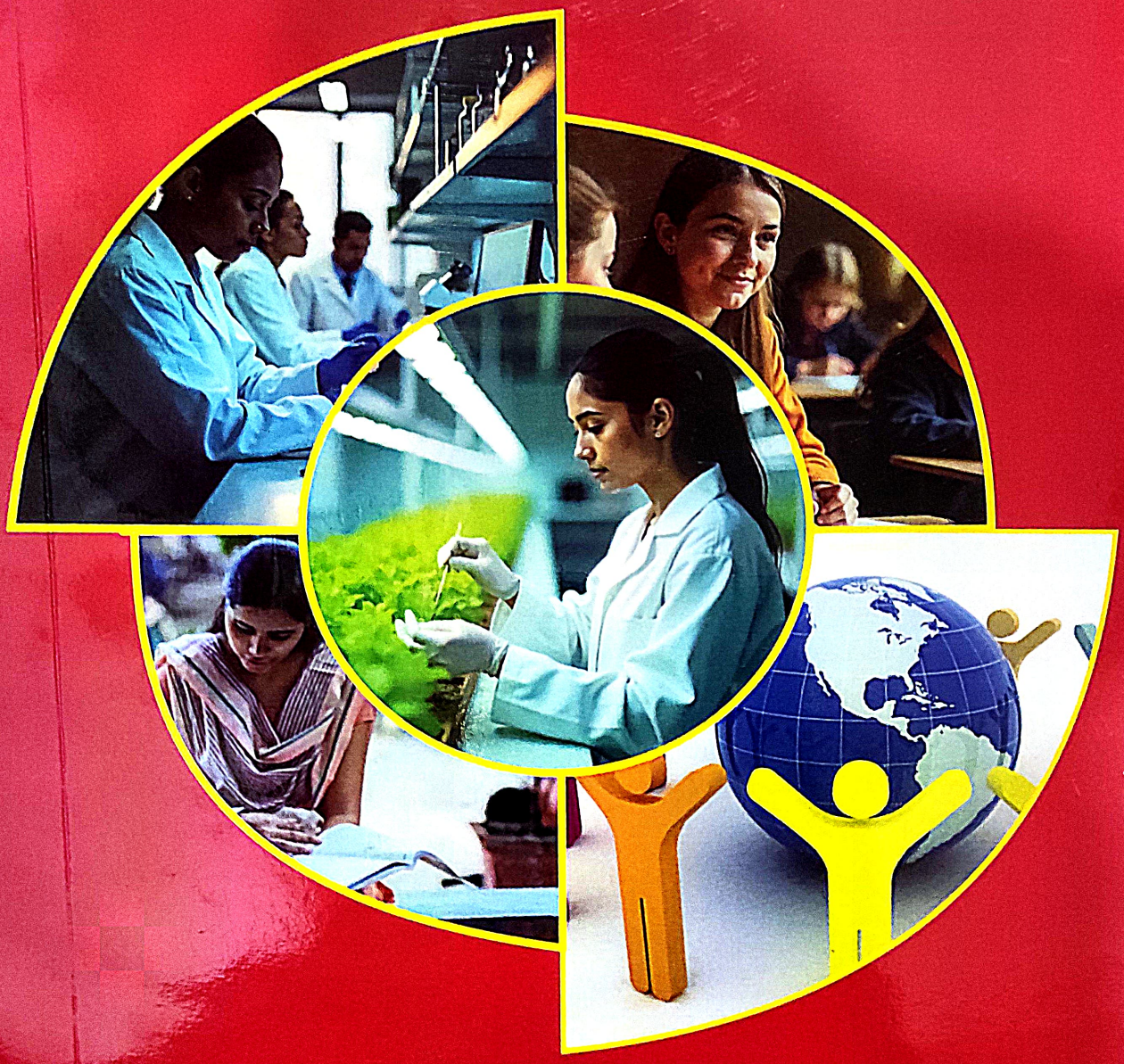

संपादक
डॉ. मयुर वासुरभाई भम्मर

Published by:
Rajiv Kumar Sharma
JTS Publications
V-508, Gali No. 17, Vijay Park Delhi-110053
Mob.08527460252, 9990236819
Email: jtspublications@gmail.com

शोध और नवाचार

संपादक
डॉ. मयुर वासुरभाई भम्मर

© Publisher

First Edition, 2025
ISBN 978-93-49496-35-4
Price : 1500/-

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है।

Cover Design : Rajiv Sharma
Laser typeset by : Santoshi Computers, Delhi-53

PRINTED IN INDIA
Published and Printed by JTS Publications, Delhi-110053

अनुक्रमाणिका

क्र.	लेख का नाम /लेखक	पेज
	सम्पादकीय- डॉ. मयुर वासुरभाई भम्मर	05
1.	शोध, नवाचार और मनोविज्ञान **डॉ. मयुर वासुरभाई भम्मर**	11
2.	इको-ब्रिक्स: सुरेंद्रगढ़ शाला की प्लास्टिक मुक्ति की क्रांतिकारी पहल **श्रीमती दीप्ति सी. बिष्ट**	21
3.	प्राचीन भारत में वास्तुकला **डॉ. भुपेन्द्र कौर**	28
4.	शिक्षा का अर्थ एवं मुग़ल कालीन महिला शिक्षा की विशेषताएँ **डॉ ओम प्रकाश सिंह**	33
5.	विद्यालय स्तर पर किशोरी छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में नवाचार आधारित सुधारात्मक प्रयास **डॉ. गौतमकुमार आर. दलवी**	42
6.	परामर्श मनोविज्ञान **आशाबा राजेन्द्रसिंह परिहार**	47
7.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०: एक परिचय **श्रीमती सीमा नाईक**	53
8.	अद्रश्य ऊर्जा – “आभा मंडल” **डॉ. मनीष पी. शुक्ला**	59
9.	गुजरात में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या और वृद्धजनों की समस्याएँ **प्रो. नितिन बी. मकवाणा**	63
10.	दलित साहित्य और सामाजिक चेतना **डॉ. हितेशगिरि वी. गोस्वामी**	70
11.	अग्निपुराण में वर्णित तीर्थो का माहात्म्य **डॉ.काजलबेन परसोत्तमभाई पटेल**	74
12.	हिंदी भाषा, मालवी भाषा के साहित्य के संदर्भ में **प्रशांत त्रिवेदी**	79
13.	भारतीय ज्ञान परंपरा में योग की सार्वभौमिकता एवं महत्त्व **आनंद कुमार जैन**	87
14.	सामाजिक विज्ञान में डिजिटल शिक्षा तथा ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली (ई-लर्निंग) के विविध आयाम **डॉ. कुमारी ज्योति, डॉ. मनीष कांत**	91

15. मानव मस्तिष्क और मनोविज्ञान की गहराई — 95
डिम्पी कौशिक पंडया

16. लोकगीतों और कहावतों में सामाजिक बोध — 98
डॉ. मोतीलाल शाकार

17. आर्थिक विकास पर प्रदूषण का प्रभाव — 103
डॉ. ममता प्रद्युमनभाई आचार्य

18. पीढ़ीगत अंतर को पाटना: समकालीन समाज में माता-पिता और किशोरों के बीच संबंध और समझ को बढ़ावा देना — 108
सूर्यानन्द राव

19. सामाजिक विज्ञानों में शोध एवं नवाचारः एक अध्ययन — 113
डॉ. अजय कुमार

20. किन्नर विमर्श और अस्मिता का प्रश्न — 116
सुधा गौड़

21. आर्ट थेरेपी का PTSD उपचार में उपयोग — 122
डॉ. महेताबबानुं जावीदहुसेन हुसैनी

22. नई शिक्षा नीति: बदलता भारत — 128
प्रा. बी. ए. माढक

23. पढ़ाई का बोज और छात्र आत्महत्या: मनोवैज्ञानिक कारण और समाधान — 132
डॉ. आर.एम.राणा

24. अनुसंधान प्रक्रिया में पुस्तकालय की उपयोगिता — 138
सुभद्रा एच. मारू

25. रूस यूक्रेन युद्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — 146
प्रकाश बी. घुमलिया

26. गांधी जन्मभूमि पोरबंदर के ऐतिहासिक स्थल — 154
दिव्याबेन परबतभाई गल

27. सकल घरेलू उत्पाद (GDP) पर एफडीआई (FDI) के प्रभावों का अध्ययन (भारत के संदर्भ में) — 158
सादिया आशिष रणजीत

28. क्रियात्मक अनुसंधान — 163
डॉ. अरुण कुमार मिश्र

29. वेदों में पर्यावरण संरक्षण — 169
डॉ. प्रीति प्रभात

30. अतीत से सीखना: क्यों जरूरी? — 175
श्रीमती रेखा

31. माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन 179
डॉ. इति बैनर्जी

32. सोशल मीडिया और मनोविज्ञान 182
ध्रुवी तुषारभाई राणावाया, डॉ. मयुर वी. भम्मर

33. संयुक्त राष्ट्र संघ और इसकी वर्तमान प्रासंगिकता की समालोचना पर एक विमर्श 190
सुमित कुमार

34. छत्तीसगढ़ी दानलीला में मिथकीय कथा की दृष्टि 198
डॉ. कौस्तुभ मणि द्विवदी

3

प्राचीन भारत में वास्तुकला

डॉ. भुपेन्द्र कौर, सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग
स्कूल ऑफ़ एजूकेशन एण्ड ह्यूमैनिटीज, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उत्तरप्रदेश)

- **सारांश:**

प्राचीन भारत की वास्तुकला भारतीय संस्कृति, धार्मिक परंपराओं और सामाजिक जीवन का अद्वितीय परिचायक है। प्रस्तुत शोधपत्र में सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मंदिर स्थापत्य तक की वास्तुकला की विकास यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। प्रारंभिक काल में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की नगरीय संरचनाएँ तथा लोथल के गोदी निर्माण तकनीकी दक्षता को दर्शाते हैं। बौद्ध काल में स्तूप, विहार और गुफा-निर्माण वास्तुकला के केंद्र बने, जिनका उद्देश्य न केवल धार्मिक आस्था बल्कि कला और संस्कृति का संरक्षण भी था। जैन वास्तुकला विशेषकर कर्नाटक और गुजरात में राजाओं के संरक्षण से अत्यंत समृद्ध हुई। हिन्दू मंदिर स्थापत्य में नागर, द्रविड़ और वेसर तीन प्रमुख शैलियाँ विकसित हुईं, जिनके अंतर्गत गर्भगृह, मंडप, शिखर और विमान जैसी विशेषताओं ने भारतीय मंदिरों को एक विशिष्ट पहचान दी। मंदिर वास्तुकला केवल धार्मिक स्थल न होकर जीवन, ब्रह्मांड और मनुष्य की प्रतीकात्मक संरचना भी प्रस्तुत करती है। उपसंहार में स्पष्ट है कि भारतीय वास्तुकला समय के साथ विकसित हुई, जिसमें स्थानीय और विदेशी प्रभावों का भी समावेश है, विशेषतः मुगल काल में। यह अध्ययन भारतीय स्थापत्य की सांस्कृतिक धरोहर, उसके कलात्मक सौंदर्य और वैज्ञानिक नियोजन की गहरी समझ प्रदान करता है।

कीवर्ड्स: प्राचीन भारतीय वास्तुकला, सिंधु घाटी सभ्यता, बौद्ध स्तूप और विहार, जैन स्थापत्य, हिन्दू मंदिर शैलियाँ (नागर, द्रविड़, वेसर), शिखर और विमान, सांस्कृतिक धरोहर, प्रतीकात्मकता

- **प्रस्तावना:**

प्रतिकूल जलवायु के कारण प्राचीन भारत के वे ही भवन शेष बच सके हैं, जिन्हें स्थायी सामग्री द्वारा निर्मित किया गया था। इनमें से सिंधु घाटी क्षेत्र की नगरीय सभ्यता के अवशेष प्राचीनतम् हैं, जिनका काल निर्धारण दो से तीन सहस्राब्दी ई. पू. का है। दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थल- मोहन जो दडों और हडप्पा, मानकीकृत विन्यास और सुव्यवस्थित ईंटों के निर्माण के साथ नियंत्रित नियोजन दर्शाते हैं। कुछ हद तक वे विशेषताएँ मेसोपोटेमिया की वास्तुकला की याद दिलाती हैं, जिससे संकेत मिलता है कि उस समय सिंधु घटी की सभ्यता का पश्चिम एशिया के साथ कुछ संपर्क अवश्य रहा होगा।

- **भारतीय प्राचीन वास्तुकला:**

१५०० ई.पू. के लगभग आर्य बस्तियों का आवास सिंधु घाटी के शहरों का पतन हो चुका था और अधिकांश खाली कर दिए गए थे। वास्तुशिल्पीय अभिलेखों के आभाव में केवल मृत्तिका शिल्प-तथ्यों से ही उत्तर भारत की इन शताब्दियों में आर्यो की प्रगतिकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पाँचवी-छठी शताब्दी ई. पू. में बौद्ध और जैन धर्मों के प्रादुर्भाव के बाद ही इस क्षेत्र मे पुनः स्थायी सामग्रीयों से भवन निर्माण प्रारंभ हुआ।

इन स्थानों के अनेक अवशेष वास्तुकला की दृष्टि से विशेष रूचि के हैं: जिनमें मोहन जो दडो के दुर्ग का विशाल स्नानागार भी है, जो एक आयाताकार केन्द्रीय जलाशय है। इसके चारों ओर छोटे-छोटे कक्ष हैं। इसका उठा हुआ चबूतरा छोटे वर्गाकार भागों में विभाजित था, जो दोनों तरफ गलियारों से जुडा हुआ था और जिन्हें प्रायोगिक तौर पर अन्नागार माना गया है। लगभग इसी समय के और इसी प्रकार के चबूतरे राजस्थान के कालीबंगा तथा गुजरात के लोथल नामक स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं। लोथल में प्राप्त ईंटों से निर्मित तटबंध और गोदी खंभात की खाडी में जाने वाले जलमार्गों के जाल से शहर को जोडा गया था।

बौद्ध वास्तुकला की शुरूआत स्तूप से हुई। स्तूप शवों को दफनाने वाले अर्द्ध गोलाकार टीले को कहा जाता है। मूलतः भगवान् बुद्ध एवं उनके शिष्यों के भस्मावशेषों को सुरक्षित रखने के लिए निर्मित इन स्तूपों से कालांतर बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार होने लगा-तब भी, जबकि उनमें बुद्ध के शिष्यों तथा दूसरे धार्मिक पुरूषों के स्मृति-चिन्ह हैं। स्तूप के माध्यम में एक केन्द्रीय पाषाण-स्तंभ होता था, जो छत्र (शिखर) तक जाता था। इसमें ब्रह्मांडीय प्रतीकार्थ अंतर्निहित था। स्तूप का गोलार्द्ध ब्रह्मांड का प्रतीक था, अंदर का स्तुभ धरती के अक्ष को और क्रतारयुक्त छत्र-कलश स्वर्ग तक पहुँचने की सीढीयों को दर्शाते थे।

भगवान् बुद्ध के जीवन से संबंधित पवित्र स्थलों पर स्मारक स्तूपों का निर्माण किया गया था। प्रायः ऐसे स्थानों पर स्वतंत्र खडे ऊँचे पाषाण स्तंभ, जिनके शीर्ष पर राजसी चिन्ह के साथ सिंह एवं वृषभाकृतियों वाले शिल्प बने होते थे (सारनाथ, उत्तर प्रदेश में मिला चतुष्क सिंहाकृतियों की धडप्रतिमा से अलंकृत स्तंभ का भारत के राजचिन्ह के रूप में प्रयोग होता हैं)। भारत में प्रारंभिक स्तूपों के बाहरी हिस्से ईटों या ईट सदृश पत्थरों से बनाए जाते थे, जिन्हें छोटे बेलनाकार आधार पर खडा किया जाता था। मध्य प्रदेश में सांची के स्पूत का क्रमिक विस्तार ई.पू. तीसरी और पहली शताब्दी के बीच हुआ, जिससे उसके गोलार्द्ध का व्यास ३६ मीटर से भी अधिक हो गया। तीन पत्थरों से निर्मित इसका छत्रनुमा शीर्ष एक वर्गाकार रेलिगं के घेरे में प्रतिष्ठित है। एक ऊँची व गोल छत, जिस पर धरातल से बनाई गई दोहरी सीढियों द्वारा पहुँचा जा सकता है। धरातल पर पत्थरों से तैयार यांत्रिक मार्ग से घिरा हुआ है, जो लकडी जैसे छोटे खंभों व रेलिंग के साथ एक वृत्ताकार जंगले से परिभाषित है। इस मार्ग का उपयोग तीर्थ यात्रियों द्वारा दक्षिणावत्र्त दिशा में स्तूप की परिक्रमा के लिए किया जाता है, जो पूजा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है और प्रदक्षिणा के नाम से जाता जाता है। तोरणों के नाम से ज्ञात चार प्रवेशद्वारों से यहाँ पहुँचा जा सकता है, जो जंगल से अलग बाहर की ओर हैं। प्रत्येक तोरण में बलुआ पत्थर से दो खंभे बने हैं जिन पर तीन लिंटल (सरदल), काष्ठ निर्माण के विशिष्ट लक्षणों की नकल पर टिके हुए हैं। उत्कीर्ण उभार बुद्ध के जीवन और जातक लोककथाओं को दिखाते हैं।

शताब्दियों में स्तूपों की रूपरेखा धीरे-धीरे विकसित हुई। सारनाथ का धमेख स्तूप, जो पाँचवीं-छठी सदी के बीच का है, उत्कीर्ण रचनाओं से सज्जित एक उठे हुए बेलनाकार चबूतरे पर निर्मित किया गया है, जिस पर मूर्तियों के लिए मेहराबदार ताक या देवली (जो अब खाली हैं) दी गई हैं। स्तूपों के तलघरों को कभी-कभी अभिगम्य सीढियों वाले जीने के साथ विविध स्तरीय संरचनाओं में बदल दिया जाता था।

तिब्बत के साथ अपने घनिष्ठ धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधों वाले हिमालय के तराई क्षेत्र के बौद्ध स्थापत्य के उल्लेख के बिना कोई भी विवरण पूरा नहीं होगा। जम्मू-कश्मीर का लद्दाखक्षेत्र १०वीं-११वीं शताब्दी में निर्मित विहार संकुलों से भरा हुआ है।

उनमें से एक, अलची का बौद्ध विहार, देवालयों और धार्मिक स्तूपों का समूह है, जो यहाँ चोरतेन के नाम से जाना जाता है। स्तूप चबूतरों पर निर्मित हैं, जिनके सुस्पष्ट और सफेद पुते हुए गोलर्द्ध कलशनुमा मीनारों से युक्त हैं। बाहर निकले हुए छज्जों और तिकौनी छतों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित तथा नक्काशीदार लकडी के स्तंभों, आलों व छतों से युक्त इन देवालयों में दोहरी और कभी-कभी तिहरी ऊँचाइयों वाले पत्थर के कक्ष है। हेमिल स्थित १७वीं शताब्दी के विहार में दुखांग के नाम से ज्ञात सभा भवनों की एक श्रेणी शामिल है, जो अपने चित्रित लकडी के स्तंभों और बडे भित्ति चित्रों के कारण दिलचस्प हैं। पतली दरारनुमा खुली जगह और लकडी के छज्जे, पत्थर की ढलवाँ टेक लगी हुई दीवारों को नियमित बनाते हैं। यही विशेषताएँ इस क्षेत्र के महलों की स्थापना कला में विद्यमान हैं, जैसा कि लेह और लद्दाख में देखा जा सकता है।

सिक्किम भी अपनी बौद्ध परंपराओं के लिए महत्वपूर्ण है। हालाँकि भूकंप से हुई आंशिक क्षति की पूर्ति के लिए होने वाले पुनर्निर्माण कार्य के द्वारा कुछ प्राचीन स्मारकों को संरक्षित किया गया है। लद्दाख की ही तरह यहाँ भी तिब्बती प्रभाव छाया हुआ है। पत्थर की तिरछी दीवारों पर टिकी हुई ढलवाँ छतों की पंक्तियों वाले सिक्किम में रूमेटक स्थित विहार संकुल द्वारों, स्तंभों और छतों के लिए जीवंत चित्रित काष्ठशिल्प के संयोजन का प्रयोग करता है। विहारों में एक केन्द्र में स्थित मंदिर के चारों ओर भिक्षुओं के आवास हैं।

शैल गुफाओं से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चला है कि जैन भिक्षु एक जगह पर धर्म विचार हेतु अवश्य उपस्थित होते रहे हों या दिगम्बर संप्रदाय की लगभग दो सहस्त्राब्दियों से उस क्षेत्र में (वर्तमान कर्नाटक) महत्वपूर्ण उपस्थिति रही हैं प्रारम्भिक मध्य काल में दिगम्बर जैन इस क्षेत्र और पडोसी तमिलनाडु में सबसे ज्यादा फले-फूले।

इन शताब्दियों के दौरान दिगम्बरों ने तीन मुख्य राजवंशों के प्रमुख राजाओं का संरक्षण प्राप्त किया, कर्नाटक में गंग (तीसरी और ग्यारहवीं शताब्दी); राष्ट्रकूट, जिनका राज्य गंग के एकदम उत्तर में था (आठवीं से बारहवीं शताब्दी); और कर्नाटक में होयसल (११वीं शताब्दी)। दिगम्बर साधु गंग और होयसल राजवंश में उत्तराधिकार को प्रभावित करने के लिए प्रसिद्ध थे, इस तरह अनिश्चित राजनीतिक स्थिति को स्थिर करके व जैनों के लिए राजनीतिक संरक्षण और समर्थन निश्चित करते थे। बहुतायत में प्राप्त पुरालेखीय प्रमाणों में व्यापक संरक्षण व्यवस्था का ब्योरा है, जिसके तहत राजा, रानी, राज्यमंत्री तथा सेनापति जैन समुदाय को कर राजस्व, मंदिरों के निर्माण और रख-रखाव के लिए अनुदान देते थे। इसका प्रसिद्ध उदाहरण है, १०वीं सदी में गंग सेनापति चामुंडराय द्वारा श्रवणबेलगोला में बाहुबली (स्थानीय रूप से गोमतेश्वर कहे जाने वाले; पहले तीर्थकर ऋषभदेव के पुत्र) की विशाल मूर्ति के निर्माण की निगरानी।

दक्षिण तथा उत्तर के राजवंशों में धार्मिक विचारों में वैभिन्य समय में आता है। दलित राजवंशों से अपने शासन काल में धार्मिक गतिविधियों में सहयोग प्रदान किया। जैसे-आठवीं सदी में वनराज और १२वीं सदी में कुमारपाल, जिसके राज्यारोहन के पीछे महान् श्वेतांबर विद्वान् और राज्यमुत्री हेमचंद्र का हाथ था।

भारत में अब तक मौजूद प्राचीनतम मंदिर चटटानों को काटकर बनाए गए मंदिर और गुफा मंदिर हैं। कुछ उदाहरण है: बराबर पहाडियाँ (बिहार में), एलिफेंटा, भज, कार्ले, कन्हेरी, नासिक, एलोरा (सभी महाराष्ट्र में), बादामी (कर्नाटक में), पल्लवरम व ममल्लपुरम (तमिलनाडु में)। आवश्यक नहीं कि उनकी संरचना शास्त्रीय वास्तु नियमों के अनुरूप ही हो, तब भी बाद के मंदिरों के स्थापत्य में देखे गए आवश्यक अवयवों के संरचनात्मक नियमों का परिचय इनसे मिल सकता है। इनमें एक खुले बरामदे जैसे मंडप में बना साधारण गर्भगृह; सादे अथवा नक्काशीदार स्तंभों के सहारे खडा एक उपकक्ष व अन्य मंडप और कभी-कभी गर्भगृह के ऊपर विमान के सदृश्य बनी एक संरचना शामिल है। स्तूप, चैत्य व विहार, जो बाद में शैली के मंदिरों के अग्रदूत हैं, तथाकथित वैदिक (वेदों पर आधारित), बौद्ध व जैन-इन तीनों धार्मिक वर्गो की आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा करते थे। उनकी वास्तु शैली में किसी धर्म विशेष के प्रति झुकाव स्पष्ट नहीं था। पूजा व ध्यान मनन के सथलों में ये सभी मंदिर वस्तुतः भारतीय थे और यह विशिष्टता देश भर में फैले उन सभी हजारों मंदिरों में अभी भी मौजूद है और वास्तु पर लिखित ग्रंथ भी धर्मगत भिन्नताओं पर विचार-विमर्श से दूर ही रहे हैं।

मंदिर का वास्तुशिल्पीय रूप वृत्ताकार, वलयाकार, वर्गाकार या आयताकार हो सकता है। मंदिर चतुर्भुजी हो, तो वह नागर शैली का माना जाता है, जो उत्तर भारत में प्रचलित है। अष्टभुजाकार अथवा वेसर शैली के मन्दिरों का प्रचलन मध्य में पाए जाते है; और वृत्ताकार व अर्द्धवृत्ताकार वेसर शैली के मंदिरों का प्रचलन मध्य भारत में अधिक है। सामान्यतः भारतीय मंदिरों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है-

१. षड्वर्ग-अधिकतर दक्षिण भारत मे,
२. श्रृंग-उत्तर भारत में,
३. रेखा व काकरा-ज्यादातर ओडिसी में,
४. शाक्त मंदिर-सामान्यतः बंगाल व असम में स्थित हैं।

इन मंदिरों की वास्तुशिल्पीय विशिष्टताएँ इनके ऊध्व, यानी उठान व तिर्यन्मुख, अर्थात् चैडाई में क्षैतिज विस्तार में देखी जा सकती हैं। पूर्व वर्णित हर प्रकार के मंदिर की अनेक किस्में हैं। कहा जाता है कि भारत में लगभग १८,३५,००० प्रकार के मंदिर हैं।

शैलीगत अंतर सैद्धांतिक होने की अपेक्षा क्षेत्रीय अधिक हैं। मंदिर निर्माण में हिमालय की चोटियों से विंध्य पर्वतश्रेणीयों तक के क्षेत्र में नागर शैली मान्य है: विंध्य पर्वतों व कृष्णा नदी के बीच के क्षेत्र में द्रविड शैली व कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र में वेसर शैली प्रचलित रही है। इन तीन प्रमुख शैलियों के अलावा कलिंग, वरत, सुर्यदेशिक, मंदिर, भवन व योग (विष्णु तंत्र) जैसी गौण वास्तु शैलियाँ भी हैं, जो दरअसल पूर्व वर्णित तीन मुख्य क्षेत्रीय शैलियों के ही अंग हैं। 'आगम' नामक प्राचीन सिद्धान्त में हिन्दू मंदिर में पूजा की विधि के बारे में भी बताया गया है। इससें सम्बन्धित ग्रन्थों में एक मंदिर (आलय) को किसी प्रकार बनाया जाए और शैव (शिवपूजक), वैष्णव (विष्णु पूजक) या शाक्त (शक्ति पूजक) के परंपरागत वर्गीकरण के अनुसार किस प्रकार आराधना की जाए, इन सबका वर्णन किया गया है।

संस्कृत में लगभग ५०० ऐसी नियम पुस्तिकाएँ हैं, जिनमें विन्यास, प्राण-प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, संरक्षण एवं मंदिर के वास्तुशिल्प से संबंधित हर ब्योरा मौजूद है।

'आलय' शब्द का आशय वास्तव में गर्भगृह है। किन्तु आमतौर पर मंदिर के पूरे प्रांगण को, जिसके केन्द में गर्भगृह है, आलय कहा जाता है। विष्णु तंत्र के अनुसार, मंदिर ईश्वर का शरीर होता है और गर्भगृह के भीतर अवस्थित प्रतिमान उसकी आत्मा। विस्तृत प्रतीकात्मकता द्वारा मंदिर को मानव के आकार जैसा माना गया है।

गर्भगृह शीर्ष सिर है, उसके ऊपर की संरचना और शिखर सिर के बाल हैं, जो मुकुट की तरफ सजे है: गर्भगृह के सामने का द्वारमंडप शुकनासि, नाक का प्रतीक है। गर्भगृह के चारों ओर का प्रदक्षिणा पथ (अन्तराल) गरदन है; सभाकक्ष यानी मंडप धड है; उसके साथ की दीवार (प्रकार) हाथों और प्रवेश द्वार (गोपुर) पैरों का प्रतीक है। तिर्यन्मुख, अर्थात् क्षैतिज विस्तार कहुत बडे क्षेत्र में हो सकता है व सामान्यः उसी में गर्भगृह, अर्द्ध मंडप, ध्वजस्तंभ, वेदह (बलिपीठ) और प्रकार स्थित होते हैं। अर्द्ध मंडप व ध्वजस्तंभ के बीच बहुत से कक्ष हो सकते हैं। केन्द्रीय अथवा मुख्य कक्ष को महामंडप या नवरंग कहा जाता है, जिसकी छत को सहारा देने वाले स्तंभों पर प्रायः बहुत महीन नक्काशी की जाती है। वेदी के बाहर एक अखंडित पत्थर का दीपस्तंभ भी हो सकता है।

षडवर्ग मंदिरों के ऊध्व के स्पष्टतः छह सीमांकित स्तर होते हैं। सबसे निचला स्तर अधिष्ठान (तहखाना, नींव या आधार) होता है। यह १५० से भी ज्यादा प्रकार का हो सकता है। अधिष्ठान से ही मंदिर का आकार निर्धारित होता हैं कि वह वर्गाकरी होगा, आयताकार, वृत्ताकार, अष्टभुजाकार या फिर अर्द्धवृत्ताकार। कभी-कभी मंदिर एक चबूतरे (जगति) पर भी बनाया जाता है। यह विशेषतः श्रृंग मंदिर का है, इनमें चबूतरे को अधिष्ठान (जगति) की औपचारिकता मात्र से नींव में शामिल किया जाता है, यह मन्दिर की निर्धारित ऊँचाई के अन्तर्गत नहीं आता। यदि नींव जमीन पर ही हो (चबूतरे पर नहीं) और 'उपपीठ' या 'उपान' के सहारे बनी हो, तो भी उसकी ऊँचाई को मन्दिर की संभावित ऊँचाई में शामिल नहीं किया जाता।

अधिष्ठान के तुरन्त बाद दीवारों का स्तर आता है, जिस तकनीकी रूप से स्तंभ वर्ग कहा जाता है। स्तंभ दीवारों (कुड्य) में जुडे होते हैं और सामान्यः बिना किसी नक्काशी के सपाट व मजबूत होते हैं। फिर भी ये स्तंभ भिन्न आकार ले सकते हैं। इन पर प्रस्तर वर्ग टिका होता है, जो एक छत जैसा ढाँचा होता है और प्रायः पत्थर की पटियों को विभिन्न तरीकों से फैलाकर बनाया जाता है। प्रस्तर के ऊपर की दीवारें को सजावटी आलों से अंकृत किया जाता है, जो देखने में छोटी-छोटी पूजा की वेदियाँ लगती हैं।

षड्वर्ग मंदिर के ऊध्व में चौथे स्तर पर प्रस्तर के पर ग्रीवा या कंठ होता है, जो मंदिर के सबसे ऊँचे भाग गुंबद याउ शिखर को आधार देता है। अतः ग्रीवा का आकार शिखर के अनुरूप होना आवश्यक है (वर्गाकार, षड्भुजाकार, अष्ठभुजाकार, वृत्ताकार या अर्धवृत्ताकार)। शिखर (मुकुट) जो ऊध्व का पाँचवाँ स्तर है, न केवल गर्भगृह की रक्षा करता है, बल्कि उसके शालीन सौंदर्य व भव्यता का प्रतिनिधित्व भी करता है। उसे बहुत सजाया जाता है और कभी-कभी उस पर सुनहरी या तांबाई परत भी चढी होती है। शिखर का आधार उभरे आकारों (नासिका) से घिरा होता है और उन देवताओं की मूर्तियों से भी, जो उस आगम में नियत की गई हैं, जिसके अनुसार मंदिर बनाया गया है। शिखर भी १५०० से अधिक प्रकार के होते हैं। छठा स्तर 'स्तूपी', शिखर के ऊपर होता है। इसका आकार पवित्र कलश की तरह होता है, जिसे १ से २१ तक के सम या विषम अंकों में व्यवस्थित किया जाता है। यह आकार में आँवले जैसा भी हो सकता है। हालाँकि ग्रन्थों में निर्देश है कि इसका आकार मंदिर के आकार के अनुरूप होता चाहिए।

ग्रीवा, शिखर व स्तूपी की संयुक्त संरचना को विमान कहा जाता है। यह शब्द प्रायः गर्भगृह के ऊपर की पूरी संरचना के लिए प्रयुक्त होता है (कभी-कभी इसके अुतरगत गर्भगृह भी आ जाता है)। प्रायः वास्तु ग्रन्थ मंदिर के दो मुख्य भागों की बात करते हैं; विमान (गर्भगृह और उसके ऊपर की संरचना) तथा बलिपीठ (द्वारूडप के बाद की वेदी)। अन्य सभी संरचनाएँ विमान का विस्तारण होता हैं। वास्ते नियमों के अनुसार, गर्भगृह में द्वारमंडप या उपकक्ष की ओर खुलने वाले द्वार के अतिरिक्त किसी और द्वार (खिडकीयाँ या रोशनदान) का निर्माण वर्जित है।

गर्भगृह के भीतर स्तंभ नहीं बनाया जाता; बहरहाल, पत्थर का एक सोमसूत्र (जलनिकास मार्ग) अवश्य होता है। यदि आलय बनने के बाद प्रतिमान गर्भगृह में स्थापित की जाए, तो उसे गृहगर्भ कहा जाता है; दूसरी ओर यदि मंदिर के अन्य भाग बनने से पहले ही प्रतिमा गर्भगृह में स्थापित की जाए, तो उसे गर्भगृह (या क्रियागेह) कहा जाता है।

गर्भगृह के अतिरिक्त अन्य सभी मंडपों का एक महत्वपूर्ण भाग स्तंभ होता है, चाहे वह द्वारमंडप हो या उपकक्ष, सामने का कक्ष, सभाकक्ष। नृत्यमंडप, अग्नि रीतिक्रमों का कक्ष हो या छोटी मूर्तियों को स्नान कराने का कक्ष। सभी मंडपों का नाम वहाँ स्थित स्तंभों की संख्या के अनुसार रखा जाता है; सिद्धियोग (१९२ स्तंभ), जयवाह (५० स्तंभ), यक्षभद्र (४० स्तंभ), व पुष्पक (६४ स्तंभ)। ये स्तंभ आकार में वर्गाकार (ब्रह्मकांत) हो सकतें हैं, अष्टभुजाकार (विष्णुकांत), वृत्ताकार (रूद्रकांत), पंचभुजीय (शिवकांत) या

षड्भुजीय (स्कंदकांत)। जो स्तंभ फूल, पत्तियों व कथा-प्रतिमाओं से सजे होते हैं, उन्हे सश्रय कहा जाता है और सादे सज्जाविहीन स्तंभों को निराश्रय।

उत्तर भारत के श्रृंग मंदिर ऊध्र्वगामी पर्वतशिखर (शिखर का श्रृंग) से पहचाने जाते हैं।

श्रृंग के ठीक नीचे अनेक सहायक शिखर, यानी उरू श्रृंग होते हैं, जो एक प्रस्तर पर टिके होते हैं, जिस 'कपातालिल' कहा जाता है। दीवारों को 'मंदोवर' कहा जाता है और दक्षिण भारत के षड्वर्ग मंदिरों में स्तंभ वर्ग और अधिष्ठान के सदृश ही इनमें तहखाना, यानी जाड्य कुंभ होता है। विन्यास के अनुसार इस प्रकार के मंदिरों में गर्भगृह के अतिरिक्त एक अंतराल नाट्यमंदिर व भोगमंडप भी होता है।

- **उपसंहार:**

प्रस्तुत अध्याय में देश की वास्तुकला पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि बौद्ध वास्तुकला की शुरूआत स्पूत से हुई है। इसके अलावा यह भी स्पष्ट होता है कि स्पूतों की रूपरेखा का विकास अचानक नहीं हुआ हैं। भारतीय वास्तुकला पर विदेशियों का भी प्रभाव पडा है विशेष रूप से मुगल काल में मुगल शास्त्रों ने यहाँ पर वास्तुकला को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

- **सन्दर्भ ग्रन्थ**

१. पुरोहित, अंजना (२०१३): भारतीय कला, बुक ओसियन पब्लिकेशन, वाराणसी.
२. भारद्वाज, चन्द्रशेखर: भारतीय वास्तुकला का इतिहास, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
३. https://qqq.e-zigurat.com
४. https://bharatdiscover.org
५. http://ignca.gov.in
६. https://www.britannica.com
७. https://study.com

परिचय

डॉ. मयुर वी. भम्मर (GES Class-II) "कृष्णार्पण"
(एम.ए., एम.फिल., बी.एड., पीएच.डी., GSET)
संपर्क: 8200602526

डॉ. मयुर वी. भम्मर वर्तमान में *शासकीय कला महाविद्यालय, राणावाव, पोरबंदर (गुजरात)* के मनोविज्ञान विभाग में विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। इससे पूर्व उन्होंने *डी.बी. हाईस्कूल, पलसाणा, सूरत* में मनोविज्ञान विषय के शिक्षक के रूप में ९ वर्षों तक कार्य किया है।

मनोविज्ञान विषय एवं शोध कार्य में उनकी गहरी रुचि है। उन्हें पढ़ने का अत्यधिक शौक है, और लेखन कार्य उनकी विशिष्टता है। शांत स्वभाव और उत्कृष्ट लेखन कौशल के कारण उनकी कई रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं। विभिन्न समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कई रचनाएँ *प्रतिलिपि* और *मातृभारती* जैसे मंचों पर भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान देने वाले ४०० से अधिक व्यक्तियों का परिचयात्मक लेखन किया है, जो अत्यंत प्रसिद्ध हुआ है। डॉ. भम्मर ने कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिसंवादों तथा शोध-पत्रिकाओं (जर्नल्स) में शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं। साथ ही, उन्होंने ३० से अधिक पुस्तकों में अध्यायों के रूप में शोध आलेख भी लिखे हैं।

- **सम्मान एवं पुरस्कार:**

लेखन कार्य की सराहना स्वरूप *मातृभारती* द्वारा उन्हें **"मातृभारती रीडर्स चॉइस अवॉर्ड-२०१९"** से सम्मानित किया गया है। उनके उत्कृष्ट शोध कार्य हेतु उन्हें ***मनोविज्ञान भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट*** एवं ***मनोविज्ञान अध्ययन समिति, भक्त कवि नरसिंह मेहता विश्वविद्यालय, जूनागढ़*** द्वारा **"भक्त कवि नरसिंह मेहता पुरस्कार"** से भी सम्मानित किया गया है।

- **लेखक की लेखन-यात्रा की झलक:**

- सामाजिक व्यवहार का मनोविज्ञान
- व्यक्तिगत समायोजन का मनोविज्ञान
- किशोरों का मनोविज्ञान
- सामान्य मनोविज्ञान
- बाल व्यवहार का मनोविज्ञान
- जैविक मनोविज्ञान
- बचपन और बाल मनोविज्ञान
- मूलभूत मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ
- मूलभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ
- जीवन अवधि मनोविज्ञान
- परामर्श मनोविज्ञान
- विवाह का मनोविज्ञान

जे.टी.एस. पब्लिकेशन
बी–508 गली नं.17,विजय पार्क,दिल्ली –110053
मो. 08527460252,9990236819
ई मेल : jtspublications@gmail.com
ब्रांच ऑफिस : ए-9 नवीन इनक्लेव गाजियाबाद,
उत्तर प्रदेश, पिन -201102

मूल्य : १५००.०० रूपये
ISBN 978-93-49496-35-4